अध्यात्म की ओर कैसे बढ़ें?

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जब आंख खोलकर देखते हैं तो बाह्य जगत दिखायी देता है और जब आंख मुदकर देखते हैं तो अन्तर जगत दिखायी देता है। पांच इन्द्रियां मनुष्य को बाह्य जगत का दर्शन कराती हैं। बाह्य जगत में मनुष्य अधिक जीता है। भीतरी जगत का वह स्पर्श ही नहीं करता। भारतीय साहित्य में, संस्कृति में भीतरी जगत में जीने की कल्पना की गई है। वहां बाह्य जगत को महत्व नहीं दिया गया है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य अध्यात्म जगत से जुड़ा हुआ है। भीतरी और बाहरी जगत में सन्तुलन होना आवश्यक है। सन्तुलन के बिना जीवन अधूरा है। मानव ही सम्पूर्ण प्राणियों में श्रेष्ठ है। विवेक एक ऐसा तत्व है जो सभी प्राणियों से मनुष्य को अलग करता है। भारतीय दर्शन में बाह्य जगत को मिथ्या और आन्तरिक जगत को सत्य कहा गया है। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या कहकर जगत के मिथ्यात्व को प्रकट किया गया है। भगवान् शंकाराचार्य ने केवल एक ही तत्व को सत्य कहा। वह तत्व है आत्मा। बाह्य जगत क्षणिक है। आज है कल नहीं रहेगा। क्षण–क्षण परिवर्तनशील है। बाह्य जगत पौद्‌गलिक है। रूप, रस, गंध, स्पर्श से युक्त है। यह जगत निस्सार है। इसमें तत्व को खोजना बेकार है। यह व्यवहार तक सीमित है। जैसे ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी की आवश्यकता होती है, किन्तु ऊपर चढ़ जाने के बाद सीढ़ी बेकार हो जाती है, उसी तरह यह जगत है। आत्मज्ञान हो जाने पर यह बाह्य जगत मिथ्या प्रतीत होने लगता है। ज्ञाता द्रष्टा भाव से इस बाह्य जगत में रहना चाहिए। जैसे–जैसे अनासक्त भाव बढ़ेगा वैसे–वैसे यह जगत मिथ्या प्रतीत होने लगता है। जैसे कस्तूरी हिरन की नाभि में रहती है किन्तु उसे इसका ज्ञान नहीं रहता और वह उसकी खोज में चारों तरफ दौड़ता रहता है, यही स्थिति मनुष्य की भी है। मनुष्य अपनी आत्मा न जानकर बाहर आत्मतत्व को खोजता है।

आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है। आध्यात्मिकता के ही कारण भारत को विश्वगुरु का दर्जा प्राप्त है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के मेल से जो संक्रमण आया भौतिक समृद्धि उसी का परिणाम है। हमारे देश में सर्वप्रथम आत्मचिंतन हुआ। हम कौन हैं? कहां से

आये हैं? मरने के बाद यहां से आत्मा कहां जाती है। आत्मा का अस्तित्व है या नहीं इन सब विषयों पर भारतीय वाङ्मय में गम्भीर चिंतन हुआ है। भारतीय चिंतकों ने भौतिक समृद्धि को अधिक महत्व नहीं दिया। उनके विचार में धन नश्वर है। आज है कल नहीं रहेगा। इसलिए ऐसी सम्पदा को प्राप्त किया जाये, जिसका अस्तित्व त्रिकाल में वर्तमान रहता है। इसलिए भारतीय शास्त्र वेत्ताओं ने अपने चिंतन के केन्द्र में आत्मा को रखा। उपनिषदों के एक प्रसंग के अनुसार महर्षि याज्ञवल्य की दो पत्नियां थीं– मैत्रेयी और कात्यायनी, इसमें से एक श्रेयकामी थी और दूसरी प्रेयकामी थी। अपने अंतिम समय में अपनी सम्पत्ति का बटवारा करने के लिए अपनी दोनों पत्नियों को बुलवाया और सम्पत्ति बांटने की इच्छा की। जो अध्यात्म प्रिय थी उसने कहा कि हम उस सम्पत्ति को लेकर क्या करेंगे जो हमें शाश्वत सुख न दे सके। हमें तो ऐसी सम्पत्ति दिजिए जो जीवन नौका को पार लगा दे। किन्तु दूसरी जो भौतिक सुख चाहने वाली थी, उसने महर्षि की सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त की। भौतिक सम्पत्ति विनश्वर है और आध्यत्मिक सम्पत्ति शाश्वत। जीवन की समग्र समस्याओं का स्वरूप और समाधान समझने के लिए हमें उसके दोनों पक्षों को समझना आवश्यक है। एक वह है जो शरीर से सम्बन्धित है और दूसरा वह है जो अन्तरात्मा पर निर्भर है। शरीर की समस्याओं और आवश्यकताओं का सीधा सम्बन्ध भौतिक सुखों से है। भोजन, वस्त्र और निवास की सुविधाएं तथा इंद्रियों के अपने–अपने विषय शरीर से संबंधित हैं। ये वस्तुएं उचित समय पर और उचित मात्रा में जब मिलती रहती हैं तो शरीर की तुष्टि होती रहती है।

पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय और मन ये एकादश इंद्रियां है। मन का विषय है लोभ, मोह और अहंकार ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन की जितनी मात्रा में संतुष्टि होती है उतना ही शरीर प्रसन्न रहता है। शारीरिक जीवन चर्या का प्रयास प्रायः इन्हीं कृत्यों में लगा रहता है। शरीर तुष्टि में इंद्रिय तुष्टि भी एक विषय है। आंख, कान, नाक, जीभ और जननेन्द्रिय के अपने–अपने विषय हैं। इनकी लिप्सा ऐसी है जो भोगों की थकाने वाली मात्रा मिल जाने पर भी संतुष्ट नहीं होती। इच्छा का कोई अंत नहीं। यह आकाश के समान अनन्त है। इच्छा की पूर्ति में ही मानव लगा रहता है और भौतिक सुख–साधनों की खोज जीवनभर चलती रहती है। यह संग्रह की प्रवृत्ति भौतिक लालसा को उत्पन्न करती है। जबकि मनुष्य को खाने के

लिए चार रोटी, पहनने के लिए दो गज कपड़ा और सोने के लिए एक चारपायी की आवश्यकता होती है। इससे अधिक यदि उसे दिया जाये तो उसका उपभोग सम्भव नहीं। दस रोटी थाली में परोसी जाये तो पेट में उसके लिए जगह ही नहीं है। दुगने चौगुने आकार की चारपाई सोने के लिए दी जाये तो वह खाली पड़ी रहेगी, अनावश्यक जगह घेरेगी। इंद्रियों को सम्बन्ध अपने–अपने विषयों से है कितने ही सुन्दर दृश्य क्यों न हो उन्हें थोड़ी देर तक देखने में आंखे थक जाती हैं। आध्यात्मिकता अपनााने वाले को संयमी और संतोषी बनना पड़ता है। ऐसे व्यक्तियों को कभी आर्थिक तंगी नहीं सताती। हमारे शास्त्रों में संतोष को सुख का सबसे बड़ा लक्षण कहा गया है। ईमानदारी से जितना कमाया जा सके उसीसे व्यवस्था पूर्वक खर्च चलाया जाना चाहिए।